श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

ऋषभ गीता तृतीय अध्याय(भा॰म॰5.3)

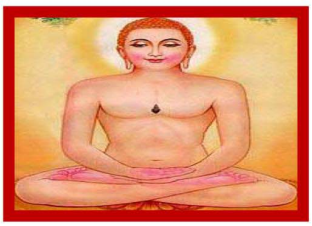

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
पञ्चमं स्कन्धः
॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

श्रीशुक उवाच
नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं(यँ)
यज्ञपुरुषमवहितात्मायजत ॥ 1॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं— राजन् ! आग्नीध्रके पुत्र नाभिके कोई सन्तान न थी, इसलिये उन्होंने अपनी भार्या मेरुदेवीके सहित पुत्रकी कामनासे एकाग्रतापूर्वक भगवान् यज्ञपुरुषका यजन किया ।

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः(फ्) प्रवर्ग्येषु
प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगो-
पपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया

सुप्रतीक आत्मानमपराजितं(न्) निजजनाभिप्रेतार्थ-

विधित्सया गृहीतहृदयो हृदयङ्गमं(म्) मनोनयनानन्दना-

वयवाभिराममाविश्चकार ॥ 2॥

यद्यपि सुन्दर अङ्गोंवाले श्रीभगवान् द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विज्, दक्षिणा और विधि-इन यज्ञके साधनोंसे सहजमें नहीं मिलते, तथापि वे भक्तोंपर तो कृपा करते ही हैं। इसलिये जब महाराज नाभिने श्रद्धापूर्वक विशुद्धभावसे उनकी अराधना की, तब उनका चित्त अपने भक्तका अभीष्ट कार्य करनेके लिये उत्सुक हो गया। यद्यपि उनका स्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र है, तथापि उन्होंने प्रवर्ग्यकर्मका अनुष्ठान होते समय उसे मन और नयनोंको आनन्द देनेवाले अवयवोंसे युक्त अति सुन्दर हृदयाकार्यक मूर्तिमें प्रकट किया ।

अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं(म्) हिरण्मयं(म्) पुरुषविशेषं(ङ्)

कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं(न्)

दरवरवनरुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं(म्)

स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूर-

नूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना

इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥ 3॥

उनके श्रीअङ्गमें रेशमी पीताम्बर था, वक्षःस्थलपर सुमनोहर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित था; भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा गलेमें वनमाला और कौस्तुभमणिकी शोभा थी। सम्पूर्ण शरीर अङ्ग-प्रत्यङ्गकी कान्तिको बढ़ानेवाले किरणजालमण्डित मणिमय मुकुट, कुण्डल, कङ्कण, करधनी, हार, बाजूबंद और नूपुर आदि आभूषणोंसे विभूषित था । ऐसे परम तेजस्वी चतुर्भुजमूर्ति पुरुषविशेषको प्रकट हुआ देख ऋत्विज्, सदस्य और यजमान आदि सभी लोग ऐसे आह्लादित हुए जैसे निर्धन पुरुष अपार धनराशि पाकर फूला नहीं समाता। फिर सभीने सिर झुकाकर अत्यन्त आदरपूर्वक प्रभुकी अर्घ्यद्वारा पूजा की और ऋत्विजोंने उनकी स्तुति की ।

ऋत्विज ऊचुः

अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां(न्) नमो नम

इत्येतावत्सदुपशिक्षितं(ङ्) कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुण-

व्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयो-

रर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥ 4॥

ऋत्विजोंने कहा— पूज्यतम ! हम आपके अनुगत भक्त हैं, आप हमारे पुनः -पुनः पूजनीय हैं। किन्तु हम आपकी पूजा करना क्या जाने ? हम तो बार-बार आपको नमस्कार करते हैं— इतना ही हमें महापुरुषोंने सिखाया है। आप प्रकृति और पुरुषसे भी परे हैं। फिर प्राकृत गुणोंके कार्यभूत इस प्रपञ्चमें बुद्धि फँस जानेसे आपके गुण-गान में सर्वथा असमर्थ ऐसा कौन पुरुष है जो प्राकृत नाम, रूप एवं आकृतिके द्वारा आपके स्वरूपका निरूपण कर सके ? आप साक्षात् परमेश्वर हैं ।

सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवर-

गुणगणैकदेशकथनादृते ॥ 5॥

आपके परम मङ्गलमय गुण सम्पूर्ण जनताके दुःखोंका दमन करनेवाले है। यदि कोई उन्हें वर्णन करनेका साहस भी करेगा, तो केवल उनके एक देशका ही वर्णन कर सकेगा ।

परिजनानुरागविरचितशबलसं(म्)शब्दसलिलसित-

किसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि सम्भृतया सपर्यया

किल परम परितुष्यसि ॥ 6॥

किन्तु प्रभो ! यदि आपके भक्त प्रेम गद्गद वाणी से स्तुति करते हुए सामान्य जल, विशुद्ध पल्लव, तुलसी और दूबके अङ्कुर आदि सामग्रीसे ही आपकी पूजा करते हैं, तो भी आप सब प्रकार सन्तुष्ट हो जाते है ।

अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचित-

मर्थमिहोपलभामहे ॥ 7॥

हमें तो अनुरागके सिवा इस द्रव्य-कालादि अनेकों अङ्गोवाले यज्ञसे भी आपका कोई प्रयोजन नहीं दिखलायी देता ।

आत्मन एवानुसवनमञ्जसाऽव्यतिरेकेण बोभूयमा-

नाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किन्तु नाथाशिष

आशासानानामेतदभिसं(म्)राधनमात्रं(म्) भवितुमर्हति ॥ 8॥

क्योंकि आपके स्वतः ही क्षण-क्षणमें जो सम्पूर्ण पुरुषार्थोका फलस्वरूप परमानन्द स्वभावतः ही निरन्तर प्रादुर्भूत होता रहता है, आप साक्षात् उसके स्वरूप ही हैं। इस प्रकार यद्यपि आपको इन यज्ञादिसे कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि अनेक प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि चाहनेवाले हमलोगोंके लिये तो मनोरथसिद्धिका पर्याप्त साधन यही होना चाहिये ।

तद्यथा बालिशानां(म्) स्वयमात्मनः(श्) श्रेयः(फ्)

परमविदुषां(म्) परम परमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं(ञ्)

चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन् स्वयं(न्) नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः ॥ 9॥

आप ब्रह्मादि परम पुरुषोंकी अपेक्षा भी परम श्रेष्ठ हैं। हम तो यह भी नहीं जानते कि हमारा परम कल्याण किसमें है, और न हमसे आपकी यथोचित पूजा ही बनी है; तथापि जिस प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष बिना बुलाये भी केवल करुणावश अज्ञानी पुरुषोंके पास चले जाते हैं, उसी प्रकार आप भी हमें मोक्षसंज्ञक अपना परमपद और हमारी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करनेके लिये अन्य साधारण यज्ञदर्शकों के समान यहाँ प्रकट हुए हैं ।

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो

भवान् निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥ 10॥

पूज्यतम ! हमें सबसे बड़ा वर तो आपने यही दे दिया कि ब्रह्मादि समस्त वरदायकोंमें श्रेष्ठ होकर भी आप राजर्षि नाभिकी इस यज्ञशालामें साक्षात् हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हो गये ! अब हम और वर क्या माँगें ?

असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां(म्)

भवत्स्वभावानामात्मारामाणां(म्) मुनीनामनवरत-

परिगुणितगुणगणपरममङ्गलायनगुणगण कथनोऽसि ॥ 11॥

प्रभो! आपके गुणगणोंका गान परम मङ्गलमय है। जिन्होंने वैराग्यसे प्रज्वलित हुई ज्ञानानिके द्वारा अपने अन्तःकरणके राग-द्वेषादि सम्पूर्ण मलोंको जला डाला है, अतएव जिनका स्वभाव आपके ही समान शान्त है, वे आत्माराम मुनिगण भी निरन्तर आपके गुणोंका गान ही किया करते हैं ।

अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु

विवशानां(न्) नः(स्) स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकल-

कश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥ 12॥

अतः हम आपसे यही वर माँगते है कि गिरने,ठोकर खाने,छींकने अथवा जंभाई लेने और सङ्कटादिके समय एवं ज्वर और मरणादिकी अवस्थाओं में आपका स्मरण न हो सकनेपर भी किसी प्रकार आपके सकलकलिमल-विनाशक 'भक्तवत्सल','दीनबन्धु' आदि गुणद्योतक नामोंका हम उच्चारण कर सके ।

किञ्चायं(म्) राजर्षिरपत्यकामः(फ्) प्रजां(म्)

भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां(म्)

स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो

धनदमिवाधनः(फ्) फलीकरणम् ॥ 13॥

इसके सिवा, कहनेयोग्य न होनेपर भी एक प्रार्थना और है। आप साक्षात् परमेश्वर हैं, स्वर्ग-अपवर्ग आदि ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे आप न दे सकें। तथापि जैसे कोई कंगाल किसी धन लुटानेवाले परम उदार पुरुषके पास पहुँचकर भी उससे भूसा ही माँगे, उसी प्रकार हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तानको ही परम पुरुषार्थ मानकर आपके ही समान पुत्र पानेके लिये आपकी आराधना कर रहे हैं।

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया मायया

नवसितपदव्यानावृतमतिर्विषयविषरयानावृत-

प्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥ 14॥

यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आपकी मायाका पार कोई नहीं पा सकता और न वह किसीके वशमें ही आ सकती है। जिन लोगोंने महापुरुषोंके चरणोंका आश्रय नहीं लिया, उनमें ऐसा कौन है जो उसके वशमें नहीं होता, उसकी बुद्धिपर उसका परदा नहीं पड़ जाता और विषयरूप विषका वेग उसके स्वभावको दूषित नहीं कर देता ?

यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहृत-

स्तत्रार्थधियां(म्) मन्दानां(न्) नस्तद्यद्देवहेलनं(न्) देवदेवार्हसि

साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥ 15॥

देवदेव ! आप भक्तोंके बड़े-बड़े काम कर देते हैं। हम मन्दमतियोंने कामनावश इस तुच्छ कार्यके लिये आपका आवाहन किया, यह आपका अनादर ही है। किन्तु आप समदर्शी हैं, अतः हम अज्ञानियोंकी इस धृष्टताको आप क्षमा करें ।

श्रीशुक उवाच

इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो

वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः(स्) सदयमिदमाह ॥ 16॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-राजन् ! वर्षाधिपति नाभिकेपूज्य ऋत्विजोंने प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके जब पूर्वोक्त स्तोत्रसे स्तुति की, तब देवश्रेष्ठ श्रीहरिने करुणावश इस प्रकार कहा ।

श्रीभगवानुवाच

अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभ-

मभियाचितो यदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति

ममाहमेवाभिरूपः(ख्) कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा

भवितुमर्हति ममैव हि मुखं(यँ) यद् द्विजदेवकुलम् ॥ 17॥

श्रीभगवान् ने कहा-ऋषियो! बड़े असमंजसकी बातहै। आप सब सत्यवादी महात्मा हैं, आपने मुझसे यह बड़ा दुर्लभ वर माँगा है कि राजर्षि नाभिके मेरे समान पुत्र हो। मुनियो ! मेरे समान तो मैं ही हूँ, क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। तो भी ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या नहीं होना चाहिये, द्विजकुल मेरा ही तो मुख है ।

तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयावतरिष्याम्यात्मतुल्य- मनुपलभमानः ॥ 18॥

इसलिये मैं स्वयं ही अपनी अंशकलासे आग्नीध्रनन्दन नाभिके यहाँ अवतार लूँगा, क्योंकि अपने समान मुझे कोई और दिखायी नहीं देता ।

श्रीशुक उवाच

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः(फ्) पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥ 19॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- महारानी मेरुदेवीके सुनते हुए उसके पतिसे इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ।

बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः(फ्)

प्रसादितो नाभेः(फ्) प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने

मेरुदेव्यां(न्) धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां(म्)

श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां(म्) शुक्लया तनुवाववतार ॥ 20॥

विष्णुदत्त परीक्षित् ! उस यज्ञमें महर्षियोंद्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर श्रीभगवान् महाराज नाभिका प्रिय करनेके लिये उनके रनिवासमें महारानी मेरुदेवीके गर्भसे दिगम्बर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियोंका धर्म प्रकट करनेके लिये शुद्धसत्त्वमय विग्रहसे प्रकट हुए ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(म्)

पञ्चमस्कन्धे नाभिचरिते ऋषभावतारो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥